3 जनवरी, 1992

साहित्य अकादेमी

इण्डिया इन्टरनेशनल सैन्टर

लेखक से भेंट

कृष्णा सोबती

किसी युग और किसी भी भाषा में एक-दो लेखक ही ऐसे होते हैं जिनकी रचनाएँ साहित्य और समाज में 'घटना' की तरह प्रकट होती हैं। पिछले तीन-चार दशकों में हिन्दी साहित्य के ऐसे नामों में कृष्णा सोबती सहज ही याद की जाती हैं। 'डार से बिछुड़ी' और 'बादलों के घेरे' कथाजगत की उसी तरह बड़ी घटनाएँ थीं जिस तरह 1991 में 'ऐ लड़की', जो एक अद्वितीय, मार्मिक और कालजयी कृति के रूप में इन दिनों चर्चा के केन्द्र में है।

इन चार दशकों में 'मित्रो मरजानी', 'यारों के यार', 'ज़िन्दगीनामा' और 'हम हशमत' ने जो रचनात्मक उत्तेजना, आलोचनात्मक विमर्श और सामाजिक-नैतिक बहसें पैदा की हैं, उनकी अनुगूँज अभी समाप्त नहीं हुई है। ध्यान देने लायक बात यह है कि ये कहानियाँ और उपन्यास और शब्दचित्र खुद अपने ऊर्जस्वी जीवट के कारण आकर्षण-केन्द्र बने हैं, न कि किसी व्यक्ति-विशेष को दी जानेवाली 'रियायत' के तहत।

कृष्णा सोबती के मामले में यह तथ्य रेखांकित करना जरूरी है कि वे एक लेखक बज़ात लेखक सबके सामने हैं। आधुनिक भारतीय समाज में स्त्री-चेतना की इस प्रखरतम प्रवक्ता का संघर्ष निस्संदेह दोहरा रहा है—उन्होंने जहाँ एक कलाकार का अनिवार्य अकेलापन झेला है, वहीं पुरूषप्रधान समाज में स्त्री होने के दुर्निवार सत्य को भी, और इस दोहरे संघर्ष में एक रचनाकार का व्यक्तित्व ही उनकी असली पहचान है।

इस पहचान के साथ ही उनका यह दायित्व-बोध उभरता है जिसे वे अपने 'आध्यात्मिक युगल' छद्मनाम हशमत मियाँ के हवाले से इस तरह रखती हैं:

"दोस्तो, हर लेखक अपने लिए लेखक है। अपने किये लेखक है। वह अपने चाहने से लेखक है। अगर वह संघर्ष में जूझता है, परिस्थितियों से टक्कर लेता है तो एहसान किसी दूसरे पर नहीं, सिर्फ़ उसकी अपनी क़लम पर है। कोई भी अच्छी क़लम मूल्यों के लिए लिखती है, मूल्यों के दावेदारों के लिए नहीं। अगर ऐसा नहीं तो लेखक और कलाकार शामियानों और विज्ञान-भवनों की शोभा बन कर रह जाएंगे।"

लेखक के निजी दायित्व के इस तीखे अहसास के साथ नैतिक-सामाजिक बंधनों-सीमाओं का उनके धुर अंत तक अन्वेषण करने का हौसला चूँकि कृष्णा सोबती में है, इसलिए तलस्पर्शी स्त्री-चेतना-वादियों और लकीर के फकीरों को वे समान रूप से असमंजस में डाल देती हैं। उनकी मित्रो जब स्त्री देह की वासना की मुखर अभिव्यक्ति लेकर आयी तो जहाँ रूढ़िवाद हतप्रभ हुआ, वहीं स्त्री चेतना की किताबी समझ भी ठगी-सी रह गयी, क्योंकि मित्रो ने अंततः जो रास्ता अपनाया, वह उन्हें परिपूजा का पारंपरिक रास्ता ही जान पड़ा।

'ऐ लड़की' शायद मित्रो से भी अधिक जटिल जीवन-यथार्थ से रू-ब-रू है। इसकी उम्रदराज माँ अपनी मृत्युशय्या पर मानो अजर-अमर स्त्री का स्तोत्र पढ़ रही है। परिवार, समाज और निजी जीवन की तमाम जिम्मेदारियों, आशा-विषादों को जी लेने के बाद वह पाती है कि अंततः वह अकेली है। सारा भरा-पूरापन रीता है। फिर भी जीवन से लगाव, उद्दाम जिजीविषा उसमें बरक़रार है। दूसरी ओर उसकी प्रौढ़ होती बेटी है जो परंपरा के आवेग-अतिरेकों से कन्नी काटकर एक अकेला विद्रोही बौद्धिक जीवन बिता रही है और ये दोनों जीवन एक-दूसरे को आईना दिखा रहे हैं। अर्थवत्ता और व्यर्थता, परंपरा और विद्रोह—मानो ये सारी अवधारणाएँ उस बहुविध विराट के सामने नगण्य हो जाते हैं जिसे हम जीवन कहते हैं।

लेकिन इस प्रक्रिया में चयन का निषेध नहीं है, नवाचार और परिवर्तन का विरोध नहीं है। अगर है तो एक ऐसी दृष्टि जो मानवीय रिश्तों की, व्यक्ति और समाज के, व्यक्ति और परिवार के रिश्तों की रेशा-रेशा छानबीन करती है और उन्हें उनके असली मुक़ाम पर पहुँचाती है।

यह बात बिना किसी हिचक के कही जा सकती है कि कृष्णा सोबती का अपना जीवन-दर्शन है, जो कुछ और नहीं बल्कि जीवन का दर्शन है। मानवीय जीवन अपने विविध आयामों में, विविध विस्तारों में जो तरह-तरह के रंगरूप, व्यथा-वेदना-उल्लास, और उत्कर्ष-अपकर्ष लेकर समुपस्थित है, वही कृष्णा सोबती का लेखन-सार है। जीवन केवल एक विषयवस्तु नहीं है, वह एक शैली या अनेक शैलियों का समुच्चय भी है। जीवन एक परिदृश्य है, एक ऐसा परिदृश्य जो आसन्न विनाश की आशंकाओं से घिरा है। अपने परे वह कुछ दे या न दे, इसकी परवाह कृष्णा सोबती को नहीं है। उन्हें वास्ता है तो उन सबसे जिन्हें छुआ, देखा और पहचाना जा सकता है। वह सब जो भाषा में, भाषा के जरिये रूपायित, आंदोलित और उपलब्ध किया जा सकता है।

एक तरफ़ ऐसा बेख़ौफ़ और बेलौस जीवन-उद्घाटन, और दूसरी तरफ़ जीवन की तटस्थता का स्वीकार। इस पर किसी गढ़े-गढ़ाये, किसी और के, यहाँ तक कि खुद के बनाये दर्शन का आरोपण नहीं है। वे खुद कहती हैं :

"किसी भी रचना की प्रामाणिकता केवल लेखक की जीवन-दृष्टि से ही जुड़ी-बँधी नहीं होती। उसकी रचनात्मक उड़ान का सामर्थ्य पात्रों की मांस-मज्जा, मिजाज, स्वभाव और हड्डी की मजबूती में भी छिपा रहता है।" 'ज़िन्दगीनामा' जैसी कृति के असंख्य पात्र, स्थितियाँ, परिवेशगत सूक्ष्म वैविध्य इत्यादि तत्व इस बात के गवाह हैं कि उनका यह यथार्थ-दर्शन यथातथ्यता और यथास्थिति का अनुगायन-मात्र नहीं है। अपने असंख्य पात्रों को 'ठोस' और विश्वसनीय भाषा देते हुए वे उन्हीं की बोली-बानी में अक्सर ऐसे आयाम देती हैं जो एक गहरी काव्यात्मक संवेदना के बगैर असंभव होते। ठोस यथार्थ को गति, स्पंदन और उड़ान देकर अतियथार्थ की जादुई सरहदें पार करने में कृष्णा सोबती का भाषा-सामर्थ्य हिन्दी में लगभग अनूठा है। हिन्दी, पंजाबी, उर्दू, संस्कृत और अंग्रेज़ी जुबानों का रस, नितांत निजी आवाज़ों में अगर किसी हिन्दी रचनाकार ने निचोड़ा है तो वह कृष्णा सोबती ही हैं। भाषा की शब्दसंपदा, मुहावरेदानी, अर्थच्छटाओं को समृद्ध करने में कृष्णा सोबती लगभग बेजोड़ हैं। 'ज़िन्दगीनामा' के पहले खंड में पंजाबी-बहुल गद्य की दुरूहता की शिकायत करनेवाले पाठकों में भी कई ने यह पाया कि बीसवीं सदी के आरंभ में पंजाब के इतिहास-भूगोल की जीवंत महाधारा अंततः उन्हें अपने साथ बहा लेती है। कोई आश्चर्य नहीं कि इस उपन्यास के दूसरे खंड की आतुर प्रतीक्षा उनके असंख्य पाठकों को है।

जीवन और भाषा, दोनों के प्रति कृष्णा सोबती का यह प्रौढ़ और दायित्वशील रवैया ही उन्हें मानव और प्रकृति के अनेक अलक्षित, गोपन और दुस्तर प्रदेशों में ले जाता है। 'यारों के

यार' अगर महानगर के टुच्चे नौकरशाहों की अंतरंग आपसदार दुनिया को उघाड़ती है तो 'गुलाबजल गंडेरिया' और 'भोले बादशाह' जैसी उनकी 1952 के आसपास की कहानियाँ गली-मुहल्लों और उनमें बर्बाद ज़िन्दगियों की तस्वीर खड़ी करती हैं। 'बादलों के घेरे' और 'डार से बिछुड़ी' जैसी कहानियाँ अकेलेपन, स्त्रीत्व, और आधुनिक तथा सामंती जीवन को उकेरने के साथ-साथ स्थानों, दृश्यों और इनके अनुभव की भी पुनरर्चना करती हैं। बच्चों से बूढ़ों तक, स्त्री-पुरूषों, विभिन्न पेशेवरों, वर्गों, जातियों और बोलियों से रचा-बसा उनका कथा-संसार कभी एक कविता, कभी एक नाटक, कभी एक फ़िल्म-आलेख और कभी इन सब का मिला-जुला स्वाद देता है। उनका कृतित्व श्रव्य और दृश्य का भेद पाटता-सा दीखता है। 'मित्रो मरजानी' की 67 नाट्य-प्रस्तुतियाँ और 'डार से बिछुड़ी' का नाट्य-मंचन, और 'सिक्का बदल गया' का फिल्मांकन रंगकर्मियों के लिए चुनौती के साथ-साथ रचनात्मक ऊर्जा का भी स्रोत रहा है।

हिमाचल, पंजाब और दिल्ली—कृष्णा सोबती की कर्मभूमि और संस्कार-भूमि रही है। 1925 में गुजरात (अब पाकिस्तान के पंजाब में) में एक

ज़मींदार-अफ़सर परिवार में जन्म, शिमला, लाहौर और दिल्ली में शिक्षा, भारत-विभाजन के बाद सिरोही (आबू) के महाराज तेजसिंह के लिए गवर्नेस के रूप में दो वर्ष काटे, दिल्ली में कई जगह अध्यापन और दिल्ली प्रशासन प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम के संपादक के रूप में 1980 तक कार्य और तब से स्वतंत्र पूर्णकालिक लेखन संक्षेप में कृष्णा सोबती की जीवनी रही है। कम लिखना, मगर अच्छा लिखना उनकी पहचान है। यों जो लिखा है वह कम नहीं है।1980 में उन्हें 'ज़िन्दगीनामा' उपन्यास पर साहित्य अकादेमी का पुरस्कार दिया गया था। इसके अलावा शिरोमणि पुरस्कार तथा साहित्य कला परिषद, दिल्ली अकादेमी पुरस्कार से भी उन्हें सम्मानित किया जा चुका है। बीच में वे कुछ समय भोपाल के भारत भवन में भी रहीं। वे भारत-विभाजन की कथा 'बुनियाद' नामक लोकप्रिय टी.वी. सीरियल की परामर्शदात्री भी रह चुकी हैं। लेकिन हर बड़े लेखक की तरह उन्हें अपनी वास्तविक पहचान अपने असंख्य पाठकों की क्रिया-प्रतिक्रिया में ही नज़र आती है।

विशिष्ट ग्रन्थ–सूची

उपन्यास

डार से बिछुड़ी, *निकष*, 1958, राजकमलः दिल्ली 1958

मित्रो मरजानी : राजकमल, दिल्ली 1966, *सारिका* 1967 रूसी में अनूदित; इण्डियन लिटरेचर साहित्य अकादेमी के लिए आर.एस. यादव द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित; पंजाबी में हिन्दपाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित

यारों के यार, *धर्मयुग* 1968, राजकमल 1968 (द सेट्स ऑफ न्यू देलही, मीनाक्षी पुरी द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित

तीन पहाड़, *नई कहानियाँ*, 1968 गुजराती में अनूदित

सूरजमुखी अँधेरे के, सारिका 1972, राजकमल, दिल्ली 1972, ब्लॉसम इन द डार्क : कविता नागपाल द्वारा अंग्रेज़ी में अनूदित, विकास 1979

हम हशमत, *साप्ताहिक हिन्दुस्तान*, 1977, राजकमल, दिल्ली 1977

ज़िन्दगीनामा, *सारिका* 1979, राजकमल, दिल्ली 1979, पंजाबी में गुरदयाल सिंह द्वारा अनूदित, पंजाबी विश्व विद्यालय, पटियाला

ऐ लड़की, *वर्तमान*, 1991; राजकमल 1991

कहानियाँ

"लामा" *विचार* 1944

"नफीसा" *विचार* 1944

"सिक्का बदल गया" *प्रतीक* 1948

"आज़ादी शम्मा जान की गुलाब" 1951

"कामदार भीखमलाल" 1952

"बहनी"*कल्पना* 1952

"बदली बरस गई" *कहानी* 1952

"गुलाब जल गडेरियाँ" 1952

"डरो मत, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगी" *प्रतीक* 1952

"ना गुलमा ना चमंठा" नया समाज 1953

"दादी अम्मा" 1954

"बादलों के घेरे"-1955

"तिल्लो ही तिल्लो" *कहानी* 1955

"कुछ नहीं, कोई नहीं" *कल्पना* 1955

बादलों के घेरे, राजकमल 1980

विविध

सोबती एक सोहबत, 1989 प्रतिनिधि रचनाएँ, राजकमल, दिल्ली, 1989

प्रमुख घटनाएँ

1925 : जन्म गुजरात में (अब पाकिस्तान में)
1944 : पहली कहानी 'लामा' प्रकाशित
1948-50: तेज सिंह की संरक्षिका
1950-51: प्राचार्या आर्मी आफ़िसर्स चिल्ड्रेन्स स्कूल, दिल्ली
1952 : सम्पादक, प्रौढ़ साहित्य, दिल्ली प्रशासन
1952 : चेन्ना, प्रकाशन के लिए स्वीकृत
1954 : हिन्दुस्तान टाइम्स अंतर्राष्ट्रीय कहानी प्रतियोगिता में दादी अम्मा - पुरस्कृत
1957 : बर्मा में क्षेत्रीय यूनेस्को कार्यशाला में सहभाग। प्रिंस आफ पीस की रचना
1979 : बादलों के घेरे का मंचन
1979 : मित्रो मरजानी का दिल्ली आर्ट थियेटर द्वारा नाट्य प्रस्तुति
1980 : शिरोमणि पुरस्कार
1980 : ज़िन्दगीनामा के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार
1980 : ट्यूनीशिया, यूगोस्लाविया और जर्मनी की यात्रा
1981 : शिरोमणि पुरस्कार
1982 : आवासीय लेखक, निराला सृजन पीठ, भोपाल
1982 : हिन्दी अकादेमी पुरस्कार
1982 : डार से बिछुड़ी की नाट्य प्रस्तुति
1980-82: पंजाबी विश्वविद्यालय की विद्वतवृत्ति
1986-87: बुनियाद की सलाहकार
1988 : राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय द्वारा मित्रो मरजानी की नाट्य प्रस्तुति
1988 : सिक्का बदल गया का फिल्मांकन